प्रवचन-१०८, गाथा-१००, रविवार, मागशर कृष्ण १२, दिनांक १६-१२-१९७९

नियमसार, गाथा १००, इसमें आधार। **इस प्रकार एकत्वसप्तति में (-श्री पद्मनन्दि-आचार्यवरकृत पद्मनन्दिपंचविंशतिका के एकत्वसप्तति नामक अधिकार में ३९, ४० तथा ४१वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—**आधार दिया है कि मैं ऐसा कहता हूँ परन्तु आचार्य भी ऐसा कह गये हैं।

तदेकं परमं ज्ञानं तदेकं शुचि दर्शनम्।
चारित्रं च तदेकं स्यात् तदेकं निर्मलं तपः।।

वही एक (-वह चैतन्यज्योति ही एक) परम ज्ञान है,... आहाहा! चैतन्यज्योति जो स्वरूप आत्मा, वही एक ज्ञानस्वरूप है। उससे कोई दूसरा ज्ञान अलग नहीं है। आहाहा! शास्त्रज्ञान को भी यहाँ ज्ञान नहीं कहा गया है। यह चैतन्य ज्ञानस्वरूप जो है। भाषा क्या है? **वही...** वही। **एक (-वह चैतन्यज्योति ही एक) परम ज्ञान है,...** आहाहा! उसके आश्रय से, उसके अवलम्बन से ज्ञान प्रगट होता है, इसलिए वस्तु स्वयं एक है, वही एक ज्ञान है। आहाहा! मोक्ष के मार्ग में पहला ज्ञान, दर्शन, चारित्र। उसमें ज्ञान उसे कहते हैं कि चैतन्य पदार्थ जो अन्दर चैतन्यरस से भरपूर, वही ज्ञान है। उसका ज्ञान, वह ज्ञान है। वह ज्ञानस्वरूप है और उसका ज्ञान, वह ज्ञान है। बाकी कोई पठन-वठन, बाहर की बातें, वह ज्ञान-ध्यान नहीं है। आहाहा!

वही एक पवित्र दर्शन है,... पवित्र दर्शन, वह भी एक आत्मा ही है। आहाहा! दर्शन अर्थात् समकित। **वही एक पवित्र दर्शन है,...** त्रिकाल चैतन्यज्योति भगवान, वह एक ही परम ज्योति है। एक ही है न पहले? **वही...** कहा, इसीलिए ही वहाँ ले गये। **वही एक...** अर्थात् वह एक ही **पवित्र दर्शन है,...** आहाहा! समकित और दर्शन कोई दूसरी चीज़ नहीं है। देव-गुरु-शास्त्र को मानना और नवतत्त्व के भेद मानना, वह कोई समकित नहीं है, **वही एक...** अथवा वह एक ही **पवित्र दर्शन है,...** आहाहा!

आत्मा का अन्तर पूर्ण स्वरूप, उसकी प्रतीति, उसका दर्शन वही एक दर्शन है। आहाहा! उसके सन्मुख देखने को समय नहीं मिलता और धर्म करना है और धर्म करते हैं, ऐसा मानता है। आहाहा! यहाँ तो प्रभु जो चैतन्यस्वरूपी भगवान आत्मा परमेश्वरस्वरूप

ही प्रभु है। यह ज्ञान है अथवा इसके अवलम्बन से होनेवाला वह ज्ञान है। वह वस्तु पवित्र दर्शन ही आत्मा है और उसके अवलम्बन से होनेवाला सम्यक्त्व वह दर्शन है। किसी दूसरे के अवलम्बन से दर्शन होता है, वह समकित-बमकित नहीं है। उसमें है या नहीं ? आहाहा!

न्यालभाई को भाई ने पूछा होगा। अपने न्यालभाई के पास चार-पाँच करोड़ रुपये हैं। वे पति-पत्नी दो ही हैं। इन हिम्मतभाई के भाई के पुत्र। उनसे पूछा कुछ करते हो ? कहे, हाँ! एक घण्टे पूजा-भक्ति करते हैं। हो गया लो! एक घण्टे सामने फोटो लेकर पूजा और भक्ति करते हैं। हो गया। आहाहा! अरे रे! क्या करे ? पैसेवाले का सिर घूम जाता है। सिर घूम जाता है। उससे छोटा कैसा ? पूनमचन्द, वह भी एक बार उसके पिता को ऐसा कहता था, इन्होंने कहाँ पैसे देखे हैं, कहता था। क्या भाषा थी ? हाँ, पैसे का स्वाद इन्होंने कहाँ देखा है ? क्योंकि उस समय २५-३०-४० हजार जितने होंगे। अधिक रुपये तो यहाँ थे। कस्तूरभाई। गाँव में पैसे वहाँ अधिक थे। शान्तिभाई के पिता के पास थे। अस्सी हजार कहलाते थे। शुरुआत में पहले। हम तो वहाँ पहले से जाते थे न! उनके पास कहाँ तीस-चालीस हजार थे। दोनों एक मकान में आमने-सामने रहते थे। वह वहाँ हम छाछ लेने आते थे न ? तुम्हारे घर में बुढ़िया थी न ? छोटेभाई की माँ। गाँव में छाछ लेते, इसलिए वहाँ गर्म पानी लेते। गर्म पानी एकदम निर्दोष मिले नहीं, इसलिए छाछ लेते थे। वहाँ हम जाते थे। सामने शान्तिभाई का घर और सामने इनका घर - छोटाभाई का। आहाहा! पैसा कहाँ तक ? आहाहा! गजब बात है। पैसा मारकर बुद्धि फिरा डाली।

आज तो सुना है, न्यालभाई तब कहते थे। वह बीस लाख की मोटर ली थी न तुमने! तब न्यालभाई कहते थे स्विट्जरलैंड में पचास लाख की मोटर है। किसी के यहाँ पचास लाख की मोटर है। और आज तो सुना है कि पाँच करोड़ की एक मोटर है। यह कैसा कहलाता है ? ख्रिस्ती के गुरु। पोप, पोप के पास पाँच करोड़ की एक मोटर है। हीरा-माणिक जड़ी हुई, पाँच करोड़ की। आहाहा!

मुमुक्षु : परपदार्थ कहाँ बाधक है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसकी ममता है न ? ममता मार डालती है। यह मेरा, यह मेरा... मेरा... यहाँ तो सिद्धान्त, वह सिद्धान्त नहीं कहा, कि राग-द्वेष आदि सब परद्रव्य हैं। उसमें आ गया या नहीं ? '**सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभि सेव्यतां**' मोक्षार्थी को

आश्रय लेना, वह भगवान आत्मा पूर्णानन्द का आश्रय लेना। आहाहा! इसके अतिरिक्त सब चीज़ें धूल-धाणी। भले पचास करोड़ की हो, धूल करोड़ की हो। आज और सुना है। चन्दुभाई कहते थे।

मुमुक्षु : त्यागी तो ऐसा ही कहते आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! परन्तु प्रभु! क्या हो? ईशु को स्वयं जड़ा तब गाय का माँस माँगा था। विरोधियों ने जड़ा था न? उसमें मर गया न? कीलें लगायीं। उसमें गाय का माँस माँगा था। उस समय यह दशा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! माँस के खानेवाले तो नरक में जाते हैं। भाई! वे परमेश्वर नहीं कहलाते, वे सज्जन नहीं कहलाते। आहाहा! यहाँ तो यह कहते हैं कि अन्दर पुण्य के भाव हों, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव हो, वह भी घोर संसार का मूल है, ऐसा कह गये हैं। आहाहा! क्योंकि विकल्प है। राग है, वह संसार है। भगवान आत्मा तो संसार से रहित है। वह तो सब परद्रव्य है। विकल्प है जो दया, दान, व्रत, भक्ति, वह तो परद्रव्य है। भगवान आत्मा स्वद्रव्य में तो अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति, अनन्त-अनन्त वीतरागता भरी है। वह एक ही आत्मा को दर्शन है। वह पवित्र दर्शन, वह इसका दर्शन, वह पवित्र दर्शन है। आहाहा! दूसरे ग्रन्थ का आधार दिया है। पद्मनन्दिपंचविंशति में है। यहाँ व्याख्यान में वाँचन हो गया है।

वही एक चारित्र है... अथवा वह एक ही चारित्र है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनन्त-अनन्त शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अर्थात् कि चारित्र अर्थात् अकषायभाव, उससे भरपूर भगवान पूर्ण स्वरूप, शान्ति से लबालब भरा है। उस शान्ति से भरा हुआ, वह चारित्र है और उसका आश्रय करना, वह चारित्र है। आहाहा! निश्चय चारित्रस्वरूप त्रिकाल है। उसका आश्रय लेना और स्थिर होना, वह पर्याय चारित्र है। कोई व्यवहार दया, दान, व्रत, तप, पच्चखाण बाहर के, ये कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! इसे जाना कहाँ? धन्धे के कारण फुरसत नहीं मिलती। शान्तिभाई! यह पाप। पूरे दिन पाप, पाप और पाप। इसका किया... इसका किया... इसका किया... अर..र..र! दुकान में बैठे तो ऐसे मानो सेठ। गद्दी में बैठे और ग्राहक आवे और प्रतिदिन की दो सौ-पाँच सौ रुपये की आमदनी हो। ऐसा बड़ा धन्धा हो। धन्धा बड़ा होता है न?

पालेज में हमारे बड़ी दुकान है। अब तो लड़के अलग हो गये हैं। वह अभी तीनों की बड़ी आमदनी है परन्तु इकट्ठे थे, तब एक दिन की आठ सौ रुपये की आमदनी। एक दिन की आठ सौ की आमदनी। अब भाग पड़ा। पहले लाख, सवा लाख की आमदनी होगी। अलग हो गये। वह दुकान थी। आहाहा! मस्तिष्क फट जाए न इसमें? एक दिन की हजार की आमदनी। बड़ा गृहस्थ हो, उसे पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार की आमदनी। यह मलूकचन्द और पूनमचन्द को बड़ी आमदनी है। आहाहा! एक-एक दिन की दस-दस हजार की आमदनी, आमदनी। मस्तिष्क फट जाए न! दोनों भाईयों को घड़ी के धन्धे में विवाद था। घड़ी का बड़ा धन्धा। बड़ा न्यालचन्द, छोटा यह। दोनों के पास है। एक के पास चार-पाँच करोड़, उसके पास चार-पाँच करोड़ घड़ी में विवाद था, वह विवाद मिटा। एक महीने में साठ हजार रुपये देना। पूनमचन्द ने छोटे भाई ने बड़े को लड़का नहीं है। एक लड़की है, उसका विवाह कर दिया। चार करोड़ रुपये हैं। उसे महीने में साठ हजार रुपये देना है। यहाँ मुम्बई में मात्र एक धन्धा। आहाहा! एक दिन का दो हजार देना। वह बारह महीने में महीने के साठ हजार देना। बारह महीने के ७२० हजार। है, अभी है न! यह सब उसके जोबालिया के रहे। आहाहा! मस्तिष्क फट जाए। अरे! प्रभु! तू कौन है? तेरे चैतन्यचमत्कार के एक समय के सम्यग्दर्शन की कीमत के समक्ष चक्रवर्ती के, इन्द्र के राज भी जहाँ तृणतुल्य है। आहाहा! कहीं स्तुति में आया था। देव के सुख से यह सुख जरा बूँद है। वह तो देव के सुख के साथ संसार का सुख। आत्मा के सुख के साथ किसी देव के सुख के साथ मिलान नहीं होता। देव का सुख तो जहर सुख है और आत्मा का सुख तो अमृत सुख है। उस अमृत सुख को संसार के सुख से अनन्तगुना... तब तो अनन्तगुना जहर हुआ। सेठियों को, अरबोंपति को जो सुख है, उससे अनन्तगुना सुख आत्मा में है। जाति एक हो गयी। जाति एक हो गयी, ऐसा नहीं है। सेठियों को जो सुख है, वह तो जहर है और आत्मा का सुख है, वह तो अमृत है। उसे कोई उपमा नहीं दी जा सकती। अरे! प्रभु! ऐसा तू है, भाई! आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **वही एक चारित्र है...** आहाहा! यह चारित्र की व्याख्या। अभी तो मात्र बाहर से यह छोड़कर बैठे और बैठना। चारित्र... नग्न है, नग्न है, पंच महाव्रत पालता है। पंच महाव्रत भी कहाँ थे? आहाहा! उनके लिये बनाया हुआ आहार ले। निर्दोष

आहार तो अभी मिले, ऐसा नहीं है। उनके लिये बनाया हुआ आहार हो, चौका-वौका वहाँ आहार ले। व्यवहार से यह तो वस्तु का स्वरूप हो। व्यक्ति का तो उसके परिणाम की जबावदारी में तो... सबके परिणाम की जबावदारी वह परिणाम उसे है, बापू! वह दया करनेयोग्य है। आहाहा! वस्तुस्थिति ऐसी कठिन है। आहाहा! कि उसके लिये बनाया आहार ले तो भी कहते हैं, उसे अधःकर्म करके उद्देशिक देने का प्रत्याख्यान नहीं, त्याग नहीं। वह चारित्र नहीं। चारित्र तो यह। एक ही चारित्र है।

वही एक चारित्र है... अर्थात् वह एक ही चारित्र है। स्वरूप आनन्द का नाथ, प्रभु! अन्दर त्रिकाली चारित्र—अकषायस्वरूप ही है, उसकी रमणता, वह एक ही चारित्र है। चारित्र का दूसरा प्रकार नहीं है। ऐसी बात है। आहाहा! **तथा वही एक निर्मल तप है।** अपवास करके बैठे। नकोरडा, बिना पानी के (निर्जल) पर्यूषण में दस उपवास करे, घर में न जाए, वहाँ का वहीं बैठे। कहते हैं कि वह तप नहीं है, वह तो लंघन है। आत्मा आनन्द का नाथ है, उसमें एकाकार होना, वह तप है। वह स्वयं वास्तव में तो तपस्वरूप ही है। आहाहा! अनाकुल आनन्द सागर वह स्वयं है। उसके आश्रय से वह भाव हो, वह तप है। उसके बिना तप-वप वह सब लंघन है। आहाहा! ऐसा होवे तो फिर कोई करेगा नहीं, कहते हैं। परन्तु करे क्या? यहाँ तो शुभभाव छोड़कर अशुभ करना, उसके लिये यहाँ बात नहीं है। शुभ छोड़कर अशुभ करना, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। शुभ है, वह राग है, विकार है, जहर है, दुःख है, संसार है; इसलिए वहाँ से हट जा। जहाँ भगवान बैठा है, वहाँ जा। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात! यह तप उसे कहते हैं। कहा न?

वही एक निर्मल तप है। बस। निर्मल तप उसे कहते हैं, बाकी लंघन है। आहाहा! एक मुनि दूसरे आचार्य का आधार देते हैं। स्वयं मुनि हैं, वे आचार्य का आधार देते हैं। पद्मनन्दि आचार्य भी यह कहते हैं। मैं अकेला कहता हूँ, ऐसा नहीं। पद्मनन्दि आचार्य कहते हैं। आहाहा! एक श्लोक हुआ। उसे तप कहते हैं। देखा? निर्मल तप। 'तपन्ते इति तपः' अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित, निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित विशेष-विशेष उग्र पुरुषार्थ से आनन्द की निर्मल धारा विशेष बढ़े, इच्छा का नाश होकर निरिच्छक दशा विशेष बढ़े, उसे तप कहा जाता है। दूसरे को तप नहीं कहते। इसमें है या नहीं? यहाँ सोनगढ़ का है यह? पद्मनन्दि आचार्य का आधार देते हैं। आहाहा! अरे! भाई!

तू कब करेगा ? प्रभु ! ऐसा अवसर मिला। आहाहा ! सुनना मुश्किल पड़े, ऐसा तुझे सुनने को मिला। आहाहा ! नहीं कहा था ? हमारे गुरु थे। बेचारे ऐसे लौकिक सज्जन थे। बहुत सज्जन। भाई ने देखे हैं ? 'राणपर' देखे थे। राणपर और ७१ के वर्ष में वहाँ राजकोट आये थे। भाई ने चातुर्मास करने की प्रार्थना की थी। आहाहा ! ठाकरसीभाई ने। ७१ के वर्ष की बात है। ७० में दीक्षा और फिर ७१ के वर्ष में वहाँ गये थे। रामजीभाई को खबर है। आहाहा ! ऐसे लौकिक सज्जन, गम्भीर, शान्त, कषाय मन्द, ब्रह्मचर्य का (रंग) यह बात कान में नहीं पड़ी कि दया पालना, वह राग है और राग है, वह हिंसा है। यह शब्द कान में नहीं पड़े। अर..र..र.. ! क्या हो ? जगत के जीव अनादि से ऐसे के ऐसे भटक रहे हैं। किसी न किसी पक्ष में पड़कर मिथ्यात्व को पोषण देते हैं।

यहाँ तो तप उसे कहते हैं कि आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु, उस अतीन्द्रिय आनन्द की; जैसे सोने को गेरु लगाने से, जैसे वह शोभता है और झलकता तथा चमकता है; इसी प्रकार भगवान आत्मा इच्छा निरोध करके आनन्द में जाए, उस आनन्द से अन्दर झलके, अतीन्द्रिय आनन्द से झलके, तपे, उसका नाम तप कहा जाता है। आहाहा ! यह एक श्लोक हुआ। दूसरा।

नमस्यं च तदेवैकं तदेवैकं च मङ्गलम्।
उत्तमं च तदेवैकं तदेव शरणं सताम्।।

यहाँ 'एव' डाला।

सत्पुरुषों को... धर्मी जीव को, सच्चे धर्मी को, सच्चे समकिती को, सच्चे ज्ञानी को, धर्म की सत्य शुरुआत हुई है, उसे **सत्पुरुषों को वही एक नमस्कारयोग्य है,...** भगवान आत्मा एक ही नमस्कार करनेयोग्य है। आहाहा ! ठीक। भगवान स्वयं कहते हैं कि उसे नमस्कार करनेयोग्य है। तुझे नमस्कार करनेयोग्य तू है। हम तो व्यवहार नमस्कार करनेयोग्य... आहाहा ! त्रिलोक के नाथ पुकार करते हैं। उनकी वाणी के ये मुनि तो आड़तिया हैं। कि नमस्कार करनेयोग्य होवे तो तू है। आहाहा ! परन्तु उसे पहिचाने बिना नमस्कार किसे कर ? आत्मा कौन है ? क्या है ? कैसे है ? यह कैसे है ? कहाँ है ? उसे जहाँ वस्तु का ज्ञान, भान ही नहीं, वहाँ उसे फिर नमस्कार करना ? अन्दर कहाँ नमस्कार ? यह तो बाहर के व्यर्थ में किया करता है। इन पंच परमेष्ठी को नमस्कार और इस नवकार को नमस्कार, शास्त्र को नमस्कार, वह सब तो पुण्यभाव है; वह कहीं धर्म-वर्म नहीं है। आहाहा ! आचार्य महाराज का यह पुकार है।

वहीं, **सत्पुरुषों को वही एक...** मूल तो यह कहा **तदेवैकं** वह ही, ऐसा। **वही एक...** वह एक ही नमस्कारयोग्य है। वह एक ही नमस्कारयोग्य है। आहाहा! दुनिया की दरकार छोड़कर जगत को प्रसिद्ध करते हैं। यह दुनिया कैसे मानेगी, करेगी, इसकी उन्हें कुछ पड़ी नहीं है। प्रभु! मार्ग यह है। आहाहा! चैतन्य अन्दर भगवान... आहाहा! विराजमान है। आहाहा! पूर्णानन्द से भरपूर, अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर, भरचक भरपूर... आहाहा! अतीन्द्रिय शान्ति से भरपूर, अतीन्द्रिय वीतरागभाव से भरपूर ऐसा भगवान एक ही भगवान **नमस्कारयोग्य है,...** आहाहा! नमः समयसाराय—आता है न पहला? यह वह बात है।

मेरा प्रभु पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान है और उसकी कीमत है, इसलिए अब मैं उसे नमता हूँ। मेरा ढलान, मेरा झुकाव आत्मा चिदानन्द प्रभु है, वहाँ मेरा झुकाव है। वह नमस्कार है। आहाहा! बात-बात में अन्तर है। आहाहा! यह तो चार मांगलिक में से निकालेंगे, हों! **सत्पुरुषों को वही एक...** अथवा वह एक ही **नमस्कारयोग्य है,...** एक ही नमस्कारयोग्य है। दूसरा नमस्कारयोग्य है, वह सब व्यवहार है, जाननेयोग्य है। आहाहा! ऐसा होगा तो देव और गुरु को कोई मानेगा नहीं फिर। परन्तु जिसे ऐसी मान्यता होती है, उसे ऐसा व्यवहार विनय, विवेक आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? जिसे सत्य यही है और इसका दर्शन और ज्ञान, वही वस्तु है—ऐसा भान होता है, उसे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विनय करने का शुभभाव आये बिना नहीं रहता। तथापि वह शुभभाव पुण्य-बन्ध का कारण है, ऐसा वह जानता है। वह शुभभाव मुझे धर्म होता है, ऐसा वह नहीं जानता। आहाहा! इन्द्र, यह एक आठवाँ द्वीप है न, कौन सा, नन्दीश्वरद्वीप। इन्द्र, समकिती नन्दीश्वरद्वीप में जाते हैं। एकावतारी भवी, शकेन्द्र, घुँघरुँ बाँधकर भगवान की प्रतिमा के सामने नाचते हैं। समझते हैं कि यह क्रिया जड़ की है, बाहर की है, मुझमें जरा भाव है, वह शुभ है, वह सब मुझे हेय है परन्तु इस कमजोरी के कारण आये बिना नहीं रहता। आहाहा!

वही एक नमस्कारयोग्य है, वही एक मंगल है,... लो, अरिहन्ता मांगलिक, और सिद्धा मांगलिक कहाँ गया? मांगलिक में आता है न? वह व्यवहार की बात है। अरिहन्ता मंगलम्, सिद्धा मंगलम्, और साहू मंगलम्, यह तो परद्रव्य की बात है। यह तो व्यवहार मांगलिक है। यह तो विकल्प शुभराग है। निश्चय मांगलिक, वह एक मंगल आत्मा है। है न? '**तदेवैकं च मङ्गलम्**' एक ही वह मंगल है। आहाहा! आचार्य का जोर! **वही एक**

मंगल है,... यह भगवान आत्मा मंगल है। मं अर्थात् पाप और पुण्य, उसे गल अर्थात गाले नाश कर डाले, ऐसा प्रभु है, वह आत्मा एक ही है। आहाहा! यहाँ तो जहाँ-तहाँ आत्मा के गीत हैं। आत्मा कौन है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

अभी तो रास्ते में कुत्ते मर जाते हैं, कौन जाने ऐसे बड़े डाघा जैसे। परन्तु ऐसा कैसे हुआ होगा। अभी-अभी... मोटर के नीचे कुचल जाते हैं। सड़क पर पड़े होते हैं। बड़े डाघा जैसा होते हैं। सिर पर ट्रक चल जाता है। सड़क पर मुर्दा पड़ा हो। आहाहा! वापस मरकर बेचारा कहीं तिर्यंच की दशा में। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच है न? आहाहा! माँस न खाते हों। उसमें अवतरे। आहाहा! अरे रे! यह संसार! एक क्षण भी इस संसार को अच्छा माननेयोग्य नहीं है। आहाहा!

यह मांगलिक आत्मा है। अरिहन्त मंगल और सिद्ध मंगल निकाल दिया। वह तो व्यवहार हो गया, वह तो परद्रव्य है। केवलिपण्णत्तो धम्मो शरणम् मांगलिक, वह भी पर्याय है। यह तो यह आत्मा ही स्वयं मांगलिक है। आहाहा! है? आहाहा! **वही एक मंगल है,...** एक भी भगवान आत्मा मांगलिक है। पूर्ण शान्त और वीतराग और स्वच्छता, पूर्ण वीतरागी प्रभु आत्मा है। बाकी तो सब पर्याय में पुण्य का विकार, वह शुभराग भी घोर संसार है। क्योंकि उसका फल संसार है। आहाहा! तथापि व्यवहार का वर्णन करते हैं। चरणानुयोग में, करणानुयोग में - गणितानुयोग में (वर्णन करे) हो, उसका वर्णन करे, बतलावे। जाननेयोग्य वस्तु है, परन्तु यह आदरनेयोग्य वह नहीं है। आहाहा!

देखो! चत्तारि मंगलम्, अरिहन्ता मंगलम् - यह उड़ाया। स्वयं आचार्य हैं, वह उड़ाया। हम मांगलिक तेरे लिये व्यवहार हैं। निश्चय के लिये तेरा भगवान आत्मा मांगलिक है। आहाहा! अरे रे! ऐसा आत्मा अन्दर पूर्णानन्द और चैतन्य के रस से भरपूर, अतीन्द्रिय आनन्द और शान्तिरस का कन्द है। जैसे शकरकन्द है न? यह शक्करिया... शकरकन्द। वह शकरकन्द क्यों कहा? वह शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का कन्द है। मिठास। परन्तु वह तो अनन्त परमाणु हैं। यह तो एक ही अनन्त आनन्द का कन्द है। आहाहा! उस शकरकन्द खाने से जैसे शक्कर की मिठास आवे, इसलिए शकरकन्द कहा न? शकरकन्द का अर्थ यह कि शक्कर की जैसी मिठास देता है, वह धूल की मिठास है। आहाहा! वह तो धूल है। शकरकन्द अर्थात् धूल, मिट्टी, पुद्गल। आहाहा!

यह भगवान आत्मा अन्दर अमृत का सागर है, यह एक ही परमात्मा मांगलिक कहा जाता है। भगवान की प्रतिमा, भगवान का मन्दिर, भगवान स्वयं भी कहते हैं कि निश्चय मांगलिक हम नहीं हैं। सच्चा मांगलिक तो तू अन्दर है। आहाहा! वह चाहे तो सम्मेदशिखर की यात्रा करे और चाहे तो शत्रुंजय की करे या गिरनार की करे परन्तु वह सब शुभराग है; वह धर्म नहीं है। उसमें कहीं धर्म नहीं है। धर्म आत्मा धर्मी चैतन्य आनन्द का नाथ, उसमें आश्रित हो, वह धर्म है। आहाहा! इसमें कहाँ अब छिपाने जैसी गुप्त बात है। आहाहा! इसके बिना शरण नहीं है, बापू! यह... ऐसा मुँह फट जाएगा। सब पड़ा रहेगा। आहाहा! अरे! भाई बोल भी नहीं सकते। भाई को साध्य है या नहीं? बुलाओ। बोले बुलावे बोल सकते नहीं। भाषा बन्द हो गयी होगी। साध्य भी नहीं होगा। आहाहा! छह-छह महीने तक साध्य (होश) नहीं। पोरबन्दर भूराभाई को छह-छह महीने तक साध्य नहीं। आहाहा! अरे! प्रभु! यह तो बाह्य की साध्य नहीं परन्तु जिसे आत्मा साध्य भी नहीं और राग वह मेरा, उसमें अटका है, वह भी असाध्य है। यह क्या कहा? पुण्य के परिणाम में रुका हुआ है और पुण्य-परिणाम, वह धर्म है, वह असाध्य में है। कान्तिभाई! आहाहा! बापू! पद्धति तो यह है, भाई! कठिन लगे। ऐसी बात चलती नहीं, इसलिए कठिन लगती है, भाई! परन्तु परम सत्य तो यह है। आहाहा!

परम पीयूष। परम अमृत का सागर नाथ-प्रभु! वह शरीरप्रमाण दिखता है। है भले उसका ऐसा अवगाहन परन्तु उसके गुण के पार की बात नहीं है। आहाहा! ऐसा आत्मा प्रत्येक आत्मा में विराजमान है। वह आत्मा एक ही मांगलिक है। अरिहन्त और सिद्ध मांगलिक, वह व्यवहार में गया। आहाहा! यहाँ तो आवे महाराज! मांगलिक सुनाओ। दुकान लगानी है और दुकान ठीक से चले। कहा न? एक छोटा लड़का युवा व्यक्ति छोटी उम्र का। उसे दुकान लगानी होगी। पच्चीस-तीस लाख वाला था। महाराज! मांगलिक सुनाओ। परन्तु कहा इस देह की ५०-६०-७० वर्ष की स्थिति कहलाती है। यह देह की स्थिति है या आत्मा की? यह मुझे खबर नहीं। यह ५०-६०-७० वर्ष किसके कहलाते हैं? आत्मा के या शरीर के? आत्मा तो अनादि-अनन्त नित्य है। उसे स्थिति कैसी? अवधि तो इसे कहलाती है। आहाहा! यह मूर्त की मूर्ति है, इसकी अवधि है। भगवान तो अमूर्त अनादि-अनन्त है, उसकी अवधि नहीं। वह युवा व्यक्ति था। समझे नहीं, क्या

करे ? और या मांगलिक सुनेंगे तो अपने को... महाराज ! मांगलिक सुनाओ। (आपके) चरण हों तो अपने को पैसा-वैसा मिले। दुकान अच्छी चले।

मुमुक्षु : मुम्बई में सब ऐसा कहते हैं कि गुरुदेव के चरण होते हैं न...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब बातें हैं। पुण्य के बिना नहीं होता। यह तो अभी कहा न ? मुम्बई... डॉक्टर को बतलाने गये न ! शरीर को अब कैसे है ? अफ्रीका जाना है न, लोग कहते थे कि एक बार बताओ। डॉक्टर सब पाँच-छह। एक तो बड़ा पारसी डॉक्टर आया था। बहुत होशियार। सब डॉक्टर किसी ने एक पाई नहीं ली। पाई नहीं। अरे ! महाराज ! आप जैसे आये हैं। बड़ा पारसी डॉक्टर था।

मुमुक्षु : उम्मेदचन्द मोदी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ मोदी। एक बार कहे, हम मोटाणी के घर में थे, वहाँ एक पारसी आया था। भरूच, एक पारसी। एक घण्टे के दो सौ रुपये लिये थे। दो सौ रुपये। घर में बुलाया था। उसने एक पाई नहीं ली। त्यागी है। इनके लिये मुझे ऐसा समय कहाँ से मिले ? पाँचों ही व्यक्ति। तीन तो अपने जैन थे, इसलिए वे तो बोले हम जैन हैं महाराज ! आहाहा ! पैसा हो, वह इससे होता है। हमारे पास आने का साधारण लोग तो बहुत हैं, बापू ! साधारण हैं। वह तो पूर्व का पुण्य हो, उसके कारण आते हैं। परन्तु आत्मा को क्या ?

मुमुक्षु : आपके दर्शन हों तो मूर्खता चली जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें हैं। इसे रोग आता है, उसका क्या तब ? इस शरीर को बुखार आता है, शरीर में रोग आता है। वह सब बाहर के माहात्म्य से लोग कहते हैं। अफ्रीका से एक पत्र भी आया है। वहाँ तो बड़े गृहस्थ हैं न ? आठ तो बड़े करोड़पति हैं। बाकी सब पन्द्रह लाख, बीस लाख, पच्चीस लाख और तीस लाखवाले हैं। एक पत्र आया है, महाराज ! आप यहाँ पधारो, तब हमें चरण कराना है, तो उसका क्या करना ? पत्र आया है। और आपका आहार करना है, उसका हमें क्या करना ? लोग घर-घर में माँगेंगे। एक जगह रखना या घर-घर में करना ? ऐसा लेख (पत्र) आया है। लक्ष्मीचन्दभाई प्रमुख हैं। यहाँ आये थे न, यहाँ आये थे। लक्ष्मीचन्दभाई और जेठाभाई दोनों, सब पैसेवाले, हों ! लक्ष्मीभाई के पास सत्तर लाख रुपये हैं। जेठाभाई के पास करोड़ रुपये हैं। यहाँ तो आते थे न, उनका पत्र आया है। आप यहाँ पधारो, हमारे घर में चरण करना है। आपके शरीर को

कैसा है ? किसे खबर, क्या हुआ, कहा। आने तो दो। एक जगह आहार रखना या घर-घर में ? माँगेंगे बड़े-बड़े पैसेवाले। ऐसा लोगों को... आहाहा! यह बाहर की बातें क्या है ? बापू! उसमें क्या पड़ी है ? अन्तर भगवान विराजता है, वहाँ जा न! उसका मांगलिक कर न! वहाँ तुझे मांगलिक होगा। मं अर्थात् पाप और गल अर्थात् गलना। पाप गल जाएँगे। पाप शब्द से यहाँ पुण्य और पाप दोनों, हों! पुण्य और पाप दोनों पाप गल जाएँगे। प्रभु! यह मांगलिक तू तेरा आत्मा है परन्तु यह कैसे जँचे। आहाहा! आज रास्ते में कुत्ता मरा हुआ देखा। बड़ा कुत्ता सिर पर कुछ ट्रक या (दूसरा कुछ) फिर गया होगा। आहाहा! अरे! मरकर वापस कहीं पशु में अवतरित हुआ होगा। ऐसे अवतार अनन्त बार किये हैं, हों! उसने किये ऐसा नहीं। ऐसे अवतार पूर्व में (तुझे) अनन्त बार हो गये हैं। भ्रमणा, मिथ्यात्व की भ्रमणा ऐसी कोई सूक्ष्म है। आहाहा!

जिसे यहाँ तो शुभराग का विकल्प उठे, उसे घोर संसार कहते हैं। यह आचार्य को जगत की कहाँ पड़ी है ? वस्तुस्थिति वर्णन करते हुए वे तो निस्पृही वीतराग हैं। हमारी भक्ति और हमें आहार-पानी देने का भाव तेरा विकल्प है, वह घोर संसार है - ऐसा कहते हैं। अर..र..र..! यह तो मुनि कहते हैं। वीतराग मुनि कहते हैं। आहाहा! भाव आता अवश्य है। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक ऐसा भाव आता है परन्तु वह सब हेयबुद्धि चाहिए। उपादेय तो यह एक ही। अपने आया है न ? यह नहीं आया था ? १००वीं गाथा के शुरुआत में। **(-इस गाथा में), सर्वत्र आत्मा उपादेय है...** है ? टीका की पहली। आहाहा! ऐसा व्याख्यान सुनते हुए कितनों को ऐसा हो जाता है कि अर..र..र..! यह किस प्रकार का धर्म होगा ? यह जैनधर्म होगा ? हम तो पालीताणा की यात्रा करें। ९९ यात्रा करें.. अरे! ९९ क्या, लाख कर न! वहाँ कहाँ धर्म है ? यह तो हिलने-चलने की जड़ की क्रिया है, वाणी जड़ की है और राग मन्द रखता हो तो शुभ-पुण्य है। आहाहा! ऐसी बात है।

मांगलिक प्रभु कहते हैं कि मैं मांगलिक निश्चय से नहीं हूँ। आहाहा! यह तो तीर्थंकर, वीतरागी सन्त कहते हैं। वीतरागी सन्त कहते हैं। हम निश्चय मांगलिक नहीं हैं। तब ? कि तेरा आत्मा अन्दर निश्चय मांगलिक है। आहाहा! उन्हें कहाँ पड़ी है ? उन्हें तो सत्य आया विकल्प सहज उठा, वाणी आ गयी है। छूट गये हैं। जितना छूट गया तो सब छूट गया हो गया। आहाहा! ....हमेशा वे मांगलिक करे। सवेरे उठाकर मांगलिक सुनावे।

यहाँ कहते हैं **वही एक मंगल है,...** वह कौन ? आत्मा। आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु निर्मलानन्द स्फटिक जैसा... 'निर्मलता रे स्फटिक की, ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे...' आहाहा! 'ज्यों निर्मलता...' स्फटिक देखा ? स्फटिक मणि इतना ? मैंने तो वहाँ जामनगर में देखा। इतना स्फटिकमणि है। वह निर्मल-निर्मल होता है। जैसे उसमें निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाश किया, प्रबल कषाय अभाव रे...। कषाय का अभाव। राग भी कषाय है, उसका अभाव। आहाहा! गले उतरना कठिन पड़ता है। यह नया। एक तो फिर एक व्यक्ति ऐसा कहता है कि यह नया मार्ग निकाला। भाई! यह किसके घर का ? यह पुस्तक किसकी है, यह। यह यहाँ का लिखा हुआ है ? आहाहा!

वही एक... भाषा ऐसी है न ? '**तदेवैकं**'। '**तदेवैकं' वही एक मंगल है,...** प्रभु आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु निर्मलानन्द की खान... आहाहा! अब उसने ईशु-ख्रिस्ती का गुरु, उसे पाँच करोड़ की मोटर है, पाँच करोड़ की। पोप कहते होंगे। पाँच करोड़ की मोटर। पाँच करोड़ वह क्या ? अकेला सोना पहने तो भी। हीरा डाले होंगे। अरे रे! ऐसी दशाएँ। उसमें प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। भक्त भी प्रसन्न हो जाए और वह प्रसन्न हो जाए। बापू! यह बाहर की क्या चीज़ ? बाहर के साथ क्या सम्बन्ध है ? वह तो संयोग जो आनेवाले हों, वे आते हैं। उनके कारण से संयोग और उनके कारण से वियोग (होता है)। वह कहीं तुझसे संयोग-वियोग नहीं होता। परचीज़ का संयोग-वियोग का तू त्यागोपादानशून्यत्व है। पर के त्याग और पर के ग्रहण से तो तेरा स्वरूप शून्य है। आहाहा! अशुद्धनिश्चयनय से एक राग का ग्रहण-त्याग है। पर का ग्रहण-त्याग तो आत्मा में है ही नहीं। आत्मा रजकण-कर्म को ग्रहण करे और कर्म को भोगे और कर्म को छोड़े तथा कर्म को बाँधे, यह आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! जैनधर्म का तो यह है न कि कर्म आत्मा बाँधे। अप्पा, कत्ता, विकत्ताय। आत्मा कर्ता और विकर्ता। उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन में अनाथीमुनि का अधिकार आता है। श्वेताम्बर में (आता है) आत्मा कर्ता और आत्मा भोक्ता, बापू! वह वाणी कहीं भगवान की नहीं है। आहाहा!

और यहाँ कर्ता कहते हैं तो उस राग का कर्ता है और कर्म का कर्ता कहते हैं तो उपचार से-व्यवहार से कथन निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है। नियमसार में १८वीं गाथा

में आता है न ? व्यवहार से कर्म का कर्ता है। यह निमित्त है इसलिए। कर्ता-फर्ता नहीं है। निमित्त का ज्ञान कराते हैं। ओहोहो ! भगवान एक ही मांगलिक है। **वही एक उत्तम है...** वापस। चार बोल आते हैं न ? चत्तारि शरणम्, अरिहन्ता, चत्तारि लोगोत्तमा, चत्तारि शरणम् चार बोल आते हैं न ? चार उत्तम, इसमें यह कहते हैं **वही एक उत्तम है...** वही एक भगवान उत्तम है। इसके अतिरिक्त जगत में कोई उत्तम नहीं है। परमात्मा तीन लोक का नाथ भी व्यवहार से उत्तम है। निश्चय से उत्तम तो अन्दर तू है। आहाहा ! पहले बात सुनना कठिन पड़े। उठा तब से यह पढ़े, पढ़कर जहाँ बड़ा हो, वहाँ सगाई करे, फिर स्त्री हो, फिर दुकान में लग जाए। ऐई ! आहाहा ! ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। और शास्त्र सुने तो भी कहनेवाले कल्पना से करे और बातें करे। आहाहा !

यहाँ तो तू एक ही भगवान आत्मा सच्चिदानन्द पवित्र का पिण्ड यह पुण्य और पाप घोर संसार के कारण से रहित तेरा प्रभु है। उसे हम उत्तम कहते हैं। वह पुण्य परिणाम को उत्तम नहीं है, तीर्थंकरगोत्र को उत्तम नहीं (कहते), तीर्थंकरगोत्र जिस भाव से बँधे, वह उत्तम नहीं है। आहाहा ! गजब बात है। धीरुभाई ! ऐसी बात है। आहाहा ! प्रभु ! तुझे शरण की बात है, सत्य की बात है, प्रभु ! आहाहा ! दुनिया माने, न माने, इससे सत्य कहीं दूसरा नहीं होगा। सत्य तो सत्य ही रहेगा। आहाहा ! भले माने, न माने; उसकी संख्या न भी हो, इससे सत्य कहीं दूसरा हो जाएगा ? आहाहा !

वही एक उत्तम है... आहाहा ! प्रभु ! तुम उत्तम नहीं ? हम तो हमारे लिये उत्तम हैं। तुम्हारे लिये उत्तम तू है। आहाहा ! अन्दर है या नहीं ? यह तो मुनि कहते हैं, परन्तु मुनि आचार्य का आधार देते हैं। पद्मनन्दि आचार्य। वे पद्मनन्दि आचार्य ऐसा कहते हैं। आहाहा ! जो बहुत प्रचलित नहीं। पद्मनन्दिपंचविंशति। यहाँ तो वाँचन हो गया है। आहाहा ! व्याख्यान में पूरा वाँचन हो गया है। बहुत वर्ष हुए, परन्तु वाँचन हो गया है। पैंतालीस वर्ष तो यहाँ आये, उसे हुए हैं। पैंतालीस वर्ष। पैंतालीस वर्ष देह की स्थिति में आये थे। पैंतालीस वर्ष में आये थे और पैंतालीस हुए। शरीर को नब्बे वर्ष हुए। गर्भ सहित गिनें तो ९१वाँ वर्ष चलता है। सवा नौ महीने गिने तो ९१वाँ वर्ष है। देह की स्थिति है, प्रभु ! तुझसे उत्तम जगत में कोई नहीं है। आहाहा ! तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह उत्तम नहीं ?

मुमुक्षु : वह भी पर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव उत्तम नहीं ? उसमें से निकलेगा। आहाहा! झवेरचन्दभाई पीछे बैठे हैं।

मुमुक्षु : थोड़ी सर्दी है इसलिए...

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्दी है इसलिए। सवेरे मैंने देखा नहीं। समझ में आया ? आहाहा! यह तू एक स्वयं नमस्कारयोग्य और तू एक मांगलिक और तू एक ही उत्तम है। आहाहा! **तथा वही एक शरण है।** अरिहन्ता शरणम्, सिद्धा शरणम्। कहे, नहीं-नहीं, वे कोई शरण देने नहीं आते। अन्दर में जा, प्रभु पूर्णानन्द का नाथ है, वहाँ तुझे शरण मिलेगी। वह शरण वहाँ है। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। अतीन्द्रिय चमत्कारिक शक्तियों का तो महा चमत्कार है। दूसरे चमत्कार तुझे भासित होते हैं कि यह चमत्कार, इसे यह हुआ, इसे यह हुआ। आहाहा! आम बताते हैं न वे ? आम का झूठा आम बताते हैं। हमने दस-बारह वर्ष की छोटी उम्र में देखा है, हों! आम हो और एक आम। होवे झूठमूठ। आम कहाँ ? केरी कहाँ ? कौन जाने इस प्रकार से बतावे ऐसे। आम होवे तो यहाँ माँगने किसलिए आवे ? ऐसा आम बना न तू। हमने देखा है। दस-बारह वर्ष की उम्र थी। वहाँ कन्याशाला है। उसमें बाहर उसने रात्रि में बताया था। मैंने देखा है आम। पीला आम इतना खोटा आम। आम छोटा और कपड़ा ढँका हुअ। उसमें आम। दुनिया को चमत्कार लगता है। वह चमत्कार नहीं है, बापू! चैतन्यचमत्कार... आहाहा! एक-एक गुण में अनन्त चमत्कार, ऐसे अनन्त गुण के चमत्कार से भरपूर तो प्रभु चैतन्य है। वह जगत में तुझे शरण है। आहाहा! दूसरी कोई वस्तु शरण नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहे - अपन जवानी में कमा लें, फिर वृद्धावस्था होगी तो फिर कमाने की शक्ति नहीं रहेगी तो पैसा-बैसा होगा तो खायेंगे-पियेंगे और ठीक रहेगा। आहाहा! पहले कमा लें। फिर वृद्धावस्था में कमा नहीं सकेंगे तो वह पैसा होगा तो काम आयेगा। परन्तु तू होगा या नहीं ?

मुमुक्षु : बहुतों को ऐसा काम आया हो, इसलिए ऐसा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी काम नहीं आया। वीरजीभाई ने ऐसा कहा था। वहाँ सम्प्रदाय में अन्तिम ८९... ८९ का वर्ष। वढ़वाण नहीं। ८९ का वर्ष बहुत लोग थे। दरियापरी उपाश्रय के सामने धर्मशाला है न ? ८९ का वर्ष। तीन-तीन हजार लोग उपाश्रय

में समाते नहीं। सामने धर्मशाला है न ? वहाँ अन्दर दालान के ऊपर तो न समाये, इसलिए दालान के ऊपर बैठा नहीं जाए। सामने होवे वहाँ पाट डालकर बैठना पड़े। ऐसे सभा और ऐसे सभा। तीन-तीन हजार लोग। आहाहा! ८९ के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए ? ४७ वर्ष पहले की बात है। तब वीरजीभाई कांप में आये थे। वीरजीभाई से कहा—तुम क्यों आये हो ? अभी युवावस्था है, वहाँ कमा लें। तुम क्या कहते हो ? यह सब... यह प्रीतमभाई, यह रहे नहीं त्रिभुवनभाई। तब ऐसा कहा था, लो! कि यह कुछ कमाने आये थे। कहा परन्तु यह तुम्हें यहाँ व्याख्यान के समय समय पर आना चाहिए। अभी यह पहले कर लें। कहा, क्या कहते हो यह तुम ? फिर रहेंगे या नहीं ? कौन रहेंगे किसे खबर ? ऐसा बोले थे, हों! फिर तो बदल गये थे। यहाँ तो कहते हैं तू एक ही शरण और तू एक ही उत्तम है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)